

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 2: सांख्ययोग

6/6 (श्लोक 59-72), शनिवार, 20 दिसंबर 2025

विवेचक: गीता विद्वषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/LBkdwBxGX2U>

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

श्री मधुराष्टकम एवं गीता परिवार के मधुर, अत्यन्त प्रेरणादायी गीत के पश्चात् दीप प्रज्वलन से आज के सत्र का प्रारम्भ हुआ। इसमें हम गुरुदेव के मुखारविन्द से प्रवाहित ज्ञानधारा के कुछ कण प्राप्त करते हैं, जो ऐसे लगते हैं, श्रीभगवान् ने मानो हमारे सामने अपना अन्तःकरण खोल कर रख दिया हो।

भगवद्गीता अनुपमेय गीत है जिसे श्रीभगवान् ने समराङ्गण में गाया है। अनुभवी अर्जुन जब हतोत्साहित हुए तो उन्हें अपने कर्त्तव्य पथ पर लाने के लिए श्रीभगवान् के मुखारविन्द से यह शाश्वत ज्ञान की धारा बही। जब अर्जुन शिष्य की भूमिका में स्वयं को प्रस्तुत करते हैं, तभी श्रीभगवान् ने इस शाश्वत ज्ञान का उद्बोधन प्रारम्भ किया और भगवान् वेदव्यास जी ने इस ज्ञान को सूत्रों के रूप में पिरो दिया। भगवद्गीता संवाद है। इसे कहीं भी श्रीभगवान् ने अध्यायों में विभाजित नहीं किया है। अर्जुन हमारे प्रतिनिधि हैं। श्रीभगवान् सर्वोपरि ज्ञान को बताते हुए हमें अविनाशी तत्त्व का बोध कराते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम स्वयं को मात्र शरीर समझ रहे हो। तुम्हारे सामने तुम्हारे परिवारजन हैं। इन्हें देखकर तुमने वास्तविक चैतन्य रूप को भुला दिया है। इसका भान कराते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि-

""कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन""

तुम्हें मात्र कर्म करने की योग्यता है। अभी तुमने ज्ञान के मन्दिर में मात्र पग ही धरा है।

इस ज्ञान के सोपान पर चढ़ते हुए उस प्रज्ञा का आलोक जिसने प्राप्त कर लिया, जिसकी बुद्धि प्रज्ञा में परिवर्तित हो गयी, उसके लक्षण कैसे हैं, उसका अन्तरङ्ग कैसा है, जीवन की आपाधापी में शुभ-अशुभ प्राप्त करते हुए भी वह किस प्रकार अडिग रहता है, किस प्रकार मनोकूल प्राप्ति के बाद वह हर्षोल्लासित नहीं होता और प्रतिकूलता में शोकाकुल भी नहीं होता?

पाँच सहस्र वर्ष के पश्चात भी यह ज्ञान हमें जीवन में पाथेय प्रदान करता है। भौगोलिक परिस्थिति भिन्न होने के बाद भी मनुष्य का स्वभाव वैसा ही है। वह अपने अन्तरङ्ग के विकारों (काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ, मोह, नैराश्रय) के साथ युद्ध करता रहता है।

रात्रंदिन आम्हा युद्धाचा प्रसंग।

अंतर्बाह्य जग आणि मन।

तुकाराम महाराज कहते हैं कि जीवन में सङ्घर्षपूर्ण परिस्थिति आती-जाती है।

अर्जुन प्रश्न करते हैं,

**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥2-54॥**

अर्जुन कहते हैं कि हे केशव! आप जिसका वर्णन कर रहे हैं, जो व्यक्ति अपनी बुद्धि को समत्व में स्थित करते हुए कार्यरत रहता है, उस स्थितप्रज्ञ के लक्षण क्या होते हैं?

प्रज्ञा में तत्त्वों को खोजना नहीं पड़ता और बुद्धि डावाँडोल होती रहती है। बुद्धि, मेधा और प्रज्ञा के भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। सर्वोपरि स्तर में वैश्विक बुद्धि होती है। जिसकी बुद्धि एकाकार हो जाती है, उसकी बुद्धि में तत्त्व सङ्क्रमित हो जाते हैं।

सिद्ध पुरुषों के लक्षण साधकों के लिए प्रेरणास्रोत होते हैं। हमारा अन्तरङ्ग भी कुछ देर के लिए समत्व में चला जाता है। संसार की आपाधापी में हमारा मन डावाँडोल तो होता है क्योंकि हम अपनी प्रज्ञा को वहाँ तक लेकर नहीं गए हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि जिसकी स्वार्थ कामनाएँ शिथिल हो गयीं, जिसने अपनी कामनाओं को ध्येय के प्रति एकाग्र कर लिया, जिसने अपनी इच्छाओं में शुभ-अशुभ को जान लिया, जिसका जीवन सबके कल्याण हेतु व्यतीत होने लगा, वह मनुष्य दुःख में उद्विग्न नहीं होता।

**दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥2-56॥**

जिसकी सुख हेतु स्पृहा, लालसा शिथिल हो गयी, जिसने आसक्ति, राग, भय और क्रोध को पार कर लिया, उसकी प्रज्ञा स्थित हो गयी।

उसके मन में सबके लिए समान स्नेह होता है।

**यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2-57॥**

वह द्वेष भी नहीं करता और शुभ प्राप्त होने में उसे आसक्ति भी नहीं रहती। जिसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो जाती है, वह स्थितप्रज्ञ हो गया।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि प्रकृति की ओर देखो जो अपने नियमों के अधीन है। चन्द्रमा चाँदनी देता है, सूर्य प्रकाश देता है, नदियाँ जल देती हैं। इस प्रकार प्रकृति जीवन के लिए सदा कार्यरत रहती है। वह उत्तम और अधम नहीं देखती, सभी के लिए सामान रहती है। वह यह नहीं देखती कि यह पापी है अथवा अच्छा है, वह अपना कार्य सामान रूप से करती रहती है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

**जो सर्वत्र सरिसा, परिपूर्ण चंद्र कां जैसा।
अधमोत्तम प्रकाशा, मार्जी न म्हणे।**

चन्द्रमा, सूरज प्रकाश देते हुए अधम-उत्तम नहीं देखते।

**गायी ची तृषा हरु, व्याघ्रा विष होऊनि मारु
हे नेणे चि गा करु तोय जैसे॥**

नदी यह नहीं देखती कि प्यास से व्याकुल जीव गाय है अथवा व्याघ्र है। गाय की प्यास बुझाऊँगी और व्याघ्र को विष बनकर

मारुंगी, ऐसा नहीं सोचती। अविच्छिन्न समता, भूतमात्र के प्रति सहृदयता आ गयी, भेद नष्ट हो गया।

आणि पालटू नाही चित्ता, कवणे वेळे,

अर्थात्, उसका चित्त डावाँडोल नहीं होता।

गोमटे काहीं पावे, तरी संतोष तेणे नाभिभवे।

अर्थात्, वह सन्तोष के साथ उछलता नहीं है। वह तो जीवन यात्रा में अनुकूलता और प्रतिकूलता में न अटकते हुए परमात्मा की प्राप्ति में आगे बढ़ता रहता है।

ऐसा हर्ष शोक रहितु, जो आत्मबोध भरितु

अर्थात्, हर्ष और शोक से रहित हो गया और आत्मबोध से जिसका हृदय भर गया।

तू जाण पां प्रज्ञा युक्त धनुर्धरा।।

समझ लो वह प्रज्ञा युक्त हो गया।

लोकमान्य तिलक जी के जीवन का प्रसङ्ग है- उनके बड़े पुत्र विश्वनाथ का प्लेग के कारण देहावसान हो गया। वे जाकर प्रणाम कर वापस आये और अपना केसरी लेखन कार्य करना आरम्भ कर दिया। बाद में उन्होंने मण्डाले के कारागृह में **गीता रहस्य** लिखा। जब वे अपना कारावास समाप्त कर बाहर आये तो अङ्ग्रेजों ने उन्हें वे कागज देने से मना कर दिया। उन्होंने कहा कि यदि आप नहीं देते हैं तो मत दीजिये, मेरी बुद्धि में वह सब है, अतः मैं उसे दोबारा लिख लूँगा। उन्होंने बाहर आकर लिखना आरम्भ भी कर दिया। तब अङ्ग्रेजों ने वे कागज वापस दे दिए और इस प्रकार एक महान ग्रन्थ "**गीता रहस्य**" तैयार हो गया।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2-57।।

निषादराज गुहा ने भगवान् श्रीराम से कहा कि माता कैकेयी के कारण आपको वनवास मिला तो श्रीराम जी ने कहा कि मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख तो आने वाले ही हैं।

।सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता।

सुख विषयों में नहीं होता। कुछ हमारे अनुकूल होता है तो हमें सुखकारक लगता है। जो सुख और दुःख दोनों को सामान भाव से देखता है, समझो उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो गयी।

सङ्कट आने पर कछुआ अपने सभी अवयवों को समेट लेता है, उसी प्रकार स्थितप्रज्ञ पुरुष सांसारिक विषयों को आने से रोकने के लिए अपनी इन्द्रियों को समेट लेता है। अपनी इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है। आँखों का विषय है रूप, कानों का विषय है शब्द, नासिका का विषय गन्ध है, जिह्वा का रस और त्वचा का विषय स्पर्श है। ये विषय दो प्रकार की संवेदनाएँ प्रकट करते हैं: अनुकूलता और प्रतिकूलता। जिस प्रकार सुगन्ध से हमारा मन प्रसन्न होता है और दुर्गन्ध से हमें घृणा लगती है, इससे हम राग-द्वेष का निर्माण करते हैं।

जिस प्रकार हम चश्मे से नहीं देखते, अपितु चश्मे के माध्यम से देखते हैं, तो यह चश्मा आँखों के लिए एक उपकरण है, उसी प्रकार हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे मन के उपकरण हैं। जब हम कोई भजन सुनते हैं तो कानों को प्रसन्नता नहीं होती, मन को होती है। जिस प्रकार हम निन्दा सुनते हैं तो कानों को दुःख नहीं होता, मन को दुःख होता है। ये इन्द्रियों के उपकरण हैं।

यदि हमने मात्र इन्द्रियों को रोका और मन से उन विषयों का चिन्तन करते रहे तो विषय का रस ही निवृत्त नहीं होता।

**विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज(म्) रसोऽप्यस्य, परं(न्) दृष्ट्वा निवर्तते ॥2.59 ॥**

निराहारी (इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले) मनुष्य के (भी) विषय तो निवृत्त हो जाते हैं (पर) रस निवृत्त नहीं होता। (परन्तु) परमात्म तत्त्व का अनुभव होने से इस स्थितप्रज्ञ मनुष्य का तो रस भी निवृत्त हो जाता है अर्थात् उसकी संसार में रसबुद्धि नहीं रहती।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि इन्द्रियों के द्वारा विषयों (शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श) का ग्रहण न करने से भी विषय निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनका रस निवृत्त नहीं होता। जैसे बुरा मत देखो, बुरा मत कहो, बुरा मत सुनो यह कहकर इन्द्रियों को तो रोक दिया पर यदि मन से जो भी बुरा देखा-सुना, उसी के बारे में सोच रहा है अथवा किसी के लिए मन में बुरे विचार रख रहा है तो वे विषय सामने से निवृत्त हो गए पर मन से निवृत्त नहीं हुए। कोई अच्छा पदार्थ खाया तो उसका मन में चिन्तन चल रहा है तो भी मन से निवृत्त नहीं होता। परमात्मा के साक्षात्कार के कारण इन्द्रियों के विषयों से भी उसका मन हट जाता है, मन तृप्त हो जाता है।

एक बार एक महात्मा जी ने अपने प्रवचन में बताया कि जो साधना के मार्ग पर चलता है, उसे कामिनी और कञ्चन दोनों से परहेज करना चाहिए। उनके दो शिष्य किसी कार्य से गाँव से बाहर जा रहे थे। रास्ते में नदी थी, जिसमें बाढ़ आयी हुई थी। तभी उन्हें किसी की पुकार सुनाई दी, बचाओ, बचाओ। एक शिष्य ने देखा कि एक स्त्री जिसने गहने भी पहने हुए थे, वह नदी में डूब रही थी और वही बचाने की पुकार कर रही थी। उसने सोचा कि गुरुजी ने कामिनी और कञ्चन का स्पर्श करने को मना किया है तो मैं कैसे जाऊँ? परन्तु दूसरा शिष्य बिना सोचे-समझे लहरों में कूद गया और उस युवती को बचा लिया। इसके पश्चात् दोनों अपना कार्य कर वापस आश्रम में आ गए। पहला शिष्य रात भर सोचता रहा कि इसने गुरुदेव का आदेश नहीं माना। प्रातः वह गुरुदेव के पास गया और सारी बात बताई।

गुरुदेव ने दूसरे शिष्य को बुला कर पूछा। तब उसने कहा कि हाँ, ऐसा हुआ था। मैंने युवती को बचाया और उसे वहाँ छोड़कर चला गया। गुरुदेव ने पहले शिष्य से कहा कि देखो! इसने तो उसे वहीं छोड़ दिया पर तुमने रात भर अपने मन में पकड़कर रखा। तुम अपने मन में उसका चिन्तन करते रहे।

श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन, यह मन विषयों के पीछे दौड़ता रहता है। इन्द्रियाँ बहकाती हैं, मन को विषयों की ओर ले जाती हैं। बुद्धिमान पुरुष की बुद्धि का भी हरण कर लेती है।

**यततो ह्यपि कौन्तेय, पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्ति प्रसभं(म्) मनः ॥2.60 ॥**

कारण कि हे कुन्तीनन्दन! (रसबुद्धि रहने से) यत्न करते हुए विद्वान् मनुष्य की भी प्रमथनशील इन्द्रियाँ (उसके) मन को बलपूर्वक हर लेती हैं।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन ये इन्द्रियाँ बड़े विक्षुब्ध करने वाले स्वभाव की होती हैं। ये अपने आहार की ओर निरन्तर दौड़ती रहती हैं। उन्हें नियन्त्रित करने वाले व्यक्ति की बुद्धि का भी हरण कर लेती हैं।

विश्वामित्र और मेनका का प्रसङ्ग सभी को ज्ञात है। भगवान् श्रीराम के कुलगुरु वशिष्ठ जी के पास कामधेनु गाय थी, जिसे देखकर विश्वामित्र जी को लगा कि उनके पास भी कामधेनु गाय होनी चाहिए। उन्होंने बारह वर्ष के लिए तपस्या की। उनकी कठिन तपस्या भङ्ग करने के लिए इन्द्र ने अप्सरा मेनका को भेजा। मेनका ने उनकी सेवा करना आरम्भ कर दिया जिससे वे अपनी तपस्या से च्युत हो गए और उनकी पुत्री शकुन्तला का जन्म हुआ। अपनी भूल की अनुभूति होने के बाद उन्होंने फिर तप

आरम्भ किया। अब इन्द्र ने अप्सरा रम्भा को भेजा। मेनका को मिले श्राप से भयभीत रम्भा ने दूर से ही सेवा की। वह उनकी कुटिया की सफाई करती, पूजा की व्यवस्था करती, पानी रखती। एक दिन पूजा की थाली नहीं सजाने पर ऋषि को क्रोध आ गया। पहले काम आ गया, फिर क्रोध आ गया और फिर से उनकी तपस्या भङ्ग हो गयी।

ये इन्द्रियाँ बुद्धि का हरण कर ले जाती हैं अतः मनुष्य को सावधान रहना चाहिए।

श्रीभगवान् यहाँ पर मनुष्य की अन्तरङ्ग स्थिति को बताते हैं। हम लोग क्यों, किस प्रकार क्रोध के आवेश में आते हैं, कभी कामनाओं के पीछे दौड़ते हैं, कभी हमारे मन में अपनी उपलब्धियों के कारण मद आ जाता है, कभी दूसरों की उपलब्धियों से मत्सर आ जाता है, कभी अपने लिए मोह आ जाता है। सृष्टि के साथ जब हमारा व्यवहार होता है तो ये सारी बातें हमारे अन्तःकरण में प्रस्फुटित होती हैं।

2.61

तानि सर्वाणि संयम्य, युक्त आसीत् मत्परः। वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.61 ॥

कर्मयोगी साधक उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके मेरे परायण होकर बैठे; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है।

विवेचन: हे अर्जुन! सारी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करते हुए, चित्त को परमात्मा में, स्थितप्रज्ञ में, सन्त महात्माओं में, महानुभावों में लगाओ, जैसे ज्ञानेश्वर महाराज, शिवाजी महाराज आदि जिनका अन्तःकरण निर्मल है, जो समत्व में स्थित हैं, उनके साथ अपने मन को जोड़ दो। उनका आधार लेते हुए तुम अपने चित्त पर नियन्त्रण करने का प्रयास करो।

जिनकी इन्द्रियाँ इस प्रकार वश में आ गईं, उनकी आँखें जो नहीं देखना चाहतीं, वो नहीं देखेंगी, उनके कान जो नहीं सुनना चाहते, वो नहीं सुनेंगे।

मनुष्य इसके विपरित ही करता है, वह विषयों के बारे में ही सोचता है और उन महापुरुषों के बारे में नहीं सोचता, जिन्होंने इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है, क्योंकि मनुष्य का मन विकारों से ग्रस्त है। परमात्मा की भक्ति क्यों करना है? परमात्मा अविकारी हैं।

तुलसीदास जी कहते हैं,

इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनं ।
मम् हृदय कंज निवास कुरु कामादि खलदल भंजनं ॥

मेरे मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह निवास करते हैं, क्योंकि सृष्टि विकारी है और विकारी लोगों का चिन्तन करने से मेरा मन विचलित होता है।

ट्रांसफार्मर में एक उच्च तीव्रता की कॉईल (High tension coil) होती है, दूसरी निम्न तीव्रता की कॉईल (low tension)। एक कॉईल से बिजली दूसरी कॉईल में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक इण्डक्शन से सङ्क्रमित होती है। उसी प्रकार हम जिसके साथ रहते हैं, उसके सारे गुण सङ्क्रमित होते हैं और ये चित्त उसी का आकार ले लेता है, जिसका वह चिन्तन करता है।

सन्त-महात्मा उस अविकारी परमात्मा का चिन्तन निष्काम भक्ति से करते हैं।

2.62

**ध्यायतो विषयान्पुंसः(स), सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः(ख), कामात्क्रोधोऽभिजायते॥2.62॥**

विषयों का चिन्तन करने वाले मनुष्य की उन विषयों में आसक्ति पैदा हो जाती है। आसक्ति से कामना पैदा होती है। कामना से (बाधा लगने पर) क्रोध पैदा होता है।

2.63

**क्रोधाद्भवति सम्मोहः(स), सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥2.63॥**

क्रोध होने पर सम्मोह (मूढ़भाव) हो जाता है। सम्मोह से स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति भ्रष्ट होने पर बुद्धि (विवेक) का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश होने पर (मनुष्य का) पतन हो जाता है।

विवेचन: इन दो श्लोकों में श्रीभगवान् ने मनुष्य के अन्तःकरण का विवरण कर दिया, क्यों वह अपने जीवन में अवसादग्रस्त होता है और क्यों वह अधोगति को प्राप्त करता है? क्योंकि मनुष्य की आँखों के सामने से विषय चला जाता है, परन्तु वह मन से उसका चिन्तन करता रहता है। किसी ने हमें बुरा कहा या स्तुति की, तो वे शब्द तो चले गए परन्तु मन पर वे अङ्कित हो गए, इसलिए दुनिया हमें नचाती है।

किसी ने नयी कार ली तो उसे देखकर हमारे मन को लगा कि हमें भी वह कार चाहिए। उसका सङ्ग निर्माण हुआ फिर उसकी आसक्ति निर्मित हुई, फिर चिन्तन आरम्भ हुआ। यदि हमारी अभिलाषा पूरी नहीं होती तो क्रोध आता है। क्रोध से मूढ़ भाव, सम्मोह हो जाता है और उससे बुद्धि, विवेक नष्ट हो जाता है। इसी अज्ञानता से पाप होते हैं, बुरे काम होते हैं।

मोह के कारण मन में एक तूफान उठता है, जिस प्रकार तूफान से उठी धूल के कारण आँखों को कुछ दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार इस अज्ञानता रूपी धूल के कारण हमारे ज्ञान चक्षु ढंक जाते हैं।

एक समाचार पढ़ा था कि एक व्यक्ति ने अपने मित्र का एप्पल फोन देखा तो उसे इतना भाया कि वह अपनी सारी जमा पूँजी निकाल कर फोन ले आया। एक दिन गलती से वह फोन छोटे बच्चे ने ले लिया और उसे गिरा दिया। गिरने से फोन टूट गया। इससे पिता ने क्रोध वश बच्चे को थप्पड़ मारा जिससे बच्चे के चश्में का काँच टूटकर उसकी आँख में लग गया। उसका ऑपरेशन कराना पड़ा।

कभी ऐसा होता है कि हमारी नई कार पर खरोच्च लग जाती है तो वह खरोच्च कार पर नहीं, मानो हमारे अन्तःकरण पर ही लग जाती है। यही आसक्ति है। अपने मन को किसी वस्तु से इतना चिपका देना कि वस्तु को लगी चोट से हमारे अन्तःकरण को चोट लगती है।

राग और द्वेष इस जीवन में आते-जाते रहते हैं और यदि हम इनसे प्रभावित होते हैं तो यह संसार हमें नचाने लगता है।

2.64

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु, विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा, प्रसादमधिगच्छति॥2.64॥**

परन्तु वशीभूत अन्तःकरण वाला (कर्मयोगी साधक) राग द्वेष से रहित अपने वश में की हुई इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सेवन करता हुआ (अन्तःकरण की) निर्मलता को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि जिसने अपने मन पर नियन्त्रण कर लिया और फिर इन्द्रियों के विषयों से निर्माण होने राग-द्वेष से विमुक्त हो गया, वह विषयों को ग्रहण करने के बाद भी अपने मन की प्रसन्नता खोता नहीं है।

ब्रह्माण्ड का एक नियम है कि हम जो भी भेजते हैं वही हमारे पास लौट कर आता है। इसे आकर्षण का नियम (law of attraction) भी कहते हैं। हमारा अन्तःकरण प्रसन्न है तो प्रसन्नता ही आती जायेगी। अप्रसन्न है तो दुःख ही आते जायेंगे।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिसके मन में प्रसन्नता आ गयी, उसके सभी दुःखों का अन्त हो जाता है।

2.65

प्रसादे सर्वदुःखानां(म्), हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु, बुद्धिः(फ़) पर्यवतिष्ठते ॥2.65 ॥

(अन्तःकरण की) निर्मलता को प्राप्त होने पर साधक के सम्पूर्ण दुःखों का नाश हो जाता है (और ऐसे) शुद्ध चित्तवाले साधक की बुद्धि निःसन्देह बहुत जल्दी (परमात्मा में) स्थिर हो जाती है।

विवेचन: गोपियाँ कहती थीं कि श्रीकृष्ण ने उनके चित्त का हरण कर लिया और उन्हें चित्तचोर कहतीं थीं।

मत्-चित्ता मद्गत-प्राणा बोधयन्तः परस्परम्।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिसने अपने चित्त को मुझमें लगा दिया उसको प्रसन्नता के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता और उसके सभी दुःखों का अन्त हो जाता है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के अन्तःकरण से प्रसन्नता रूपी अमृत का निर्झर बहने लगता है।

हमारा मन कलुषित होने से हमने इसे खो दिया। जिस प्रकार किसी तालाब में काई या कीचड़ है तो उसमें पड़ी हुई वस्तु दिखाई नहीं देती, साफ पानी में दिखाई देती है। उसी प्रकार जिसका अन्तःकरण सारे विकारों से मुक्त हो गया, वह प्रसन्नचित्त हो गया।

जैसा अमृताचा निर्झरू । प्रसवे जयाचा जठरू ।
तया क्षुधेतृषेचा अडदरू । कहीचि नाही ॥
तैसे हृदय प्रसन्न होई । तरी दुःख कैचें कें आहे?
तेथ बुद्धि आपोआपें स्थिर राही । परमात्म रूपी ॥

जिसके अन्तःकरण में अमृत प्रस्फुटित होने लगा तो उसके लिए क्षुधा और तृषा समान हो गयी। उसकी भूख प्यास का निराकरण होने लगा।

जिसके हृदय में प्रसन्नता आ गयी, उसके दुःखों का अन्त हो गया और दुःखों का अन्त होने पर बुद्धि अखण्ड, सच्चिदानन्द परमात्मा में स्थित हो जाती है और वह प्रज्ञा में परिणित हो जाती है।

जैसा निर्वातीचा दीपु । सर्वथा नेणें कंपु ।
तैसा स्थिरबुद्धि स्वस्वरूपु । योगयुक्तु ॥

अर्थात् आत्मस्वरूप में बुद्धि स्थिर हो गयी। जैसे निर्वात (वायु रहित वातावरण) में दीप जलाने से उसकी लौ विचलित नहीं होती, स्थिर रहती है, उसी प्रकार अन्तःकरण भी स्थिर हो गया।

जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती है उसका क्या होगा?

**नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य, न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः(श) शान्तिः(र), अशान्तस्य कुतः(स) सुखम्॥2.66॥**

जिसके मन-इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, ऐसे मनुष्य की (व्यवसायात्मिका) बुद्धि नहीं होती और (व्यवसायात्मिका बुद्धि न होने से) उस अयुक्त मनुष्य में निष्काम भाव अथवा कर्तव्यपरायणता का भाव नहीं होता। निष्काम भाव न होने से (उसको) शान्ति नहीं मिलती। फिर शान्ति रहित मनुष्य को सुख कैसे (मिल सकता है)?

विवेचन: जिसकी निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और जो परमात्मा से नहीं जुड़ पाता है उसके लिए श्रीभगवान् ने दो बातें बताईं, बुद्धि और भावना। भावना हमारे मन में होती है और बुद्धि तर्क करती है।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

ज्ञानेश्वर महाराज भी कहते हैं-

**अर्जुना! समत्त्व चित्ताचे तेच साथ जाण बा,
योगाचे येथ मनं आणि बुद्धिचे ऐक्य कहती।।**

मन और बुद्धि एकाकार हो गए। मन भावनाओं का अनुभव करता है और बुद्धि तर्क, ये दोनों एक साथ आ गए तो जिसे प्रेम करते हैं बुद्धि भी तर्क से उसे जानती है। जिसके मन में भावना नहीं है वह अशान्त रहता है और अशान्त व्यक्ति को सुख नहीं मिलता।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं -

**जैसे निवृत्ति नाथां चे गौरव आहे दिसा चे,
ग्रंथ नव्हे हे कृपेचे वैभव तिये।।**

मैं मेरे गुरुदेव की कृपा से यह ज्ञानेश्वरी प्रवाहित कर रहा हूँ। इसे गुरुदेव ने मेरे मुखारविन्द से प्रस्फुटित किया है। यह उनकी कृपा का वैभव है।

किसके लिए यह ग्रन्थ लिखा गया?

**आरताचे निवोरसे, गीतार्था न ग्रंथ नुसे,
शान्तरसे तो हां ग्रंथ वरिसला।।**

जो दुःखी होते हैं और जिनका मन अशान्त है ऐसे व्यक्ति के अन्तःकरण को शान्त करने के लिए भी ऐसे ग्रन्थ लिखे जाते हैं।

हम शान्ति कहाँ खो देते हैं?

**इन्द्रियाणां(म) हि चरतां(यँ), यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां(वँ), वायुर्नावमिवाम्भसि॥2.67॥**

कारण कि (अपने-अपने विषयों में) विचरती हुई इन्द्रियों में से (एक ही इन्द्रिय) जिस मन को अपना अनुगामी बना लेती है, वह (अकेला मन) जल में नौका को वायु की तरह इसकी बुद्धि को हर लेता है।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं, हे अर्जुन! मन को नियन्त्रण में करना आवश्यक है, क्योंकि यह विषयों के पीछे दौड़ता है। जैसे

समुद्र में तूफान आने पर वायु नाव का हरण करते हुए दूसरी दिशा में ले जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियों के विषयों के साथ एकाकार होने के कारण मन इन्द्रियों के माध्यम से विषयों का सेवन करता है। एक इन्द्रिय भी मनुष्य की प्रज्ञा का हरण कर लेती है। श्रीभगवान् कहते हैं, हे अर्जुन! युद्धभूमि में रहते हुए भी तुम अपने मन को निग्रहीत करो।

2.68

**तस्माद्यस्य महाबाहो, निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः(स), तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.68 ॥**

इसलिये हे महाबाहो ! जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सर्वथा वश में की हुई हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है।

विवेचन: श्रीभगवान् अर्जुन के लिए भी विशेषण का प्रयोग करते हैं। उन्हें महाबाहो कहते हैं, महापराक्रमी कहते हैं। वे कहते हैं कि अर्जुन तुमने यह किया है।

अर्जुन नरोत्तम होकर भी भटक गए हैं, तो हम तो साधारण मनुष्य हैं। वे हमारे प्रतिनिधि हैं। अर्जुन ने धनुर्विद्या सीखते हुए रात भर जागकर अपने ध्येय की प्राप्ति की है। जब अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने हेतु स्वर्ग गए, तब इन्द्र ने सेवा करने के लिए उर्वशी को भेज दिया, परन्तु जब अर्जुन ने उन्हें माता कहकर सम्बोधित किया तो उर्वशी ने उन्हें नपुंसक होने का श्राप दे दिया। अर्जुन ने अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखा और अडिग रहे। उन्होंने वह श्राप भी स्वीकार कर लिया।

इतने अडिग होकर भी इस समय युद्धभूमि में उनकी प्रज्ञा का हरण हो गया। श्रीभगवान् उनको महाबाहो कहकर उन्हें स्मरण कराते हैं कि तुम महाबाहो हो, कितने ही युद्ध तुमने लड़े और जीते भी हैं। यही श्रीभगवान् की विशेषता है कि वे अपने भक्तों को उनका सामर्थ्य याद दिलाते हैं।

जब हमारा अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं होता है और हम अपने कर्तव्य कर्म भूलने लगते हैं तो ऐसे समय में ही हमें सारथी या मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है।

जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से निग्रहीत हो गईं, उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो गई।

कई बार हमारा मन विषयों की चिन्ता ही करता रहता है, जैसे उपवास रखने पर मन खाने का ही चिन्तन करता रहे तो क्या लाभ है?

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि यदि इन्द्रियाँ अधिक मचल रही हैं तो उन्हें विषयों का थोड़ा पदार्थ देकर शान्त कर देना चाहिए, जैसे बच्चों को एक चॉकलेट देकर बहला सकते हैं।

**ऐसी युक्ति चे निया हाते, इन्द्रिया वोपि चे भाते,
तो संतोषासी वाढते मन ची करी।।**

युक्ति से काम लेना पड़ता है।

जिसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो गई है उसके दृष्टिकोण और सांसारिक व्यक्ति के दृष्टिकोण में अन्तर होता है। ये दोनों दृष्टिकोण परस्पर विरोधी होते हैं।

2.69

**या निशा सर्वभूतानां(न्), तस्यां(ञ्) जागर्ति संयमी।
यस्यां(ञ्) जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ॥2.69 ॥**

सम्पूर्ण प्राणियों की जो रात (परमात्मा से विमुखता) है, उसमें संयमी मनुष्य जागता है (और) जिसमें सब प्राणी जागते हैं (भोग और संग्रह में लगे रहते हैं), वह (तत्त्व को जानने वाले) मुनि की दृष्टि में रात है।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि जब सामान्य संसारी प्राणी रात्रि को सोते हैं तब स्थितप्रज्ञ योगी जागता है। जब सारा संसार कार्य में लगा रहता है तब मुनि की निशा होती है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जब संसार कार्य करता है तो स्थितप्रज्ञ मुनि सोता है। उनका दृष्टिकोण भिन्न होता है। सामान्य व्यक्ति को जिन बातों का आकर्षण होता है, मुनि उनके लिए उदासीन रहता है और जिन बातों में सामान्य लोगों को आकर्षण नहीं होता, मुनि उन्हीं बातों में लगा रहता है।

हमारा 'मैं' शरीर के साथ और उनका 'मैं' सोऽहम् के साथ होता है। हम 'अहम्' में स्थित होते हैं, वह 'सोऽहम्' में स्थित होता है।

अल्बर्ट आइंस्टीन को नोबेल पुरस्कार के साथ एक चेक मिला। कुछ दिन पश्चात जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने चेक जमा क्यों नहीं किया, तब उन्होंने चेक ढूँढा। वे तो अपनी खोज में ही मग्न थे। चेक के प्रति उदासीन थे। ढूँढने पर उन्होंने पाया कि उन्होंने उसे पुस्तक चिह्न बनाकर एक पुस्तक में रख दिया था।

यही सामान्य व्यक्ति और स्थितप्रज्ञ व्यक्ति में अन्तर है। स्थितप्रज्ञ का दृष्टिकोण व्यापक होता है।

2.70

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं(म्),समुद्रमापः(फ्) प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं(म्) प्रविशन्ति सर्वे,
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥2.70॥**

जैसे (सम्पूर्ण नदियों का) जल चारों ओर से जल द्वारा परिपूर्ण समुद्र में आकर मिलता है, (पर) (समुद्र अपनी मर्यादा में) अचल स्थित रहता है, ऐसे ही सम्पूर्ण भोग-पदार्थ जिस संयमी मनुष्य को (विकार उत्पन्न किये बिना ही) प्राप्त होते हैं, वही मनुष्य परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों की कामना वाला नहीं।

विवेचन: काम के पीछे दौड़ने वाला व्यक्ति कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि उनका मन भोगों में अनियन्त्रित होकर रचा-बसा है। जो कामना हम प्राप्त कर लेते हैं, उसके कोई मायने नहीं हैं क्योंकि उसके पश्चात् और चार नयी कामनाएँ जन्म ले लेती हैं।

बड़ी विलक्षण बात है कि समुद्र में चाहे कितनी भी नदियाँ अपना पानी डाल दें, वह अपनी मर्यादा उल्लङ्घित नहीं करता। नदी अपना जल सागर में छोड़ती ही रहती है पर समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता।

**जन्ही सरिता ओघे समस्त । परिपूर्ण होऊनि मिळत ।
तन्ही अधिक नोहे ईषत् । मर्यादा न संडी ॥**

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि ग्रीष्म काल में नदियों का पानी सूख जाता है। वे अपना पानी समुद्र में नहीं डालतीं फिर भी समुद्र न्यून नहीं होता। उसका पानी कम नहीं होता।

**ना तरी ग्रीष्मकाळीं सरिता । शोषूनि जाती समस्ता ।
परी न्यून नव्हे पार्था । समुद्रु जैसा ॥**

जैसे ग्रीष्मकाल में नदी का पानी सूखने से समुद्र न्यून नहीं होता उसी प्रकार तृप्त अन्तःकरण में नई कामनाएँ आने या न आने से कोई परिवर्तन नहीं होता।

श्रीभगवान् कहते हैं कि स्थितप्रज्ञ पुरुष संसार से मुँह मोड़कर एक स्थान पर जाकर बैठा नहीं है। संसार के सारे कार्य करते हुए भी उसका अन्तःकरण अविचल रहता है। समुद्र की भाँति वह शान्ति प्राप्त करता है। उसे कामनाएँ अपने पीछे दौड़ाती नहीं हैं।

हमारे सभी महानुभावों का जीवन ऐसा ही है, चाहे वे वीर सावरकर हैं या शिवाजी महाराज, विवेकानन्द जी हैं या लोक मान्य तिलक जी हैं, सन्त तुकाराम जी हैं, ज्ञानेश्वर माऊली हैं, एकनाथ जी हैं, हमारे गुरुदेव हैं।

2.71

**विहाय कामान्यः(स) सर्वान्, पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः(स), स शान्तिमधिगच्छति ॥2.71 ॥**

जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके स्पृहा रहित, ममता रहित (और) अहंकार रहित होकर आचरण करता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।

विवेचन: हे अर्जुन! वह सारी कामनाओं के परिणाम से अपने-आप को मुक्त करते हुए निर्मम और निरहङ्कार है।

निर्मम का अर्थ है, मेरा नहीं, सब कुछ तेरा है।

तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे मेरा।

वह निस्पृह हो गया, उसकी स्पृहा चली गई।

निरहङ्कार- हम अपने लिए जो सम्बोधन करते हैं, जैसे मैं यहाँ गई, मैंने यह खाया, इसके लिए जो अहम् का प्रयोग होता है, उसे शुद्ध मैं कहते हैं। जब शुद्ध 'मैं' को अशुद्धि प्राप्त होती है तब उसे **अहं गण्ड और न्यून गण्ड** (superiority complex aur inferiority complex) कहते हैं। दोनों बातें जिसके हृदय से चली गई उसे निरहङ्कार कहते हैं।

ज्ञानेश्वरी-

विश्व जी माझे घर, ऐसी मति जयाचि स्थिर,

किंबहुना चराचर आपण झाला ॥

जो अपना प्रतिबिम्ब सभी में और सबका प्रतिबिम्ब अपने अन्तःकरण में देखता है वह शान्ति प्राप्त करता है।

अन्तःकरण के निर्मम का अर्थ यह नहीं है कि उसे दूसरों के सुख-दुःख से कुछ लेना-देना नहीं है। वे रूक्ष नहीं हैं, वे दूसरों का दुःख अवशोषित करते हैं। उनके पास शान्ति होती है और उनके पास जाकर हमें भी शान्ति मिलती है।

इसे श्रीभगवान् ब्राह्मी स्थिति कहते हैं।

2.72

**एषा ब्राह्मी स्थितिः(फ) पार्थ, नैनां(म) प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि, ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥2.72 ॥**

हे पृथानन्दन ! यह ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त होकर (कभी कोई) मोहित नहीं होता। इस स्थिति में (यदि) अन्तकाल में भी स्थित हो जाय, (तो) निर्वाण (शान्त) ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

विवेचन: इस प्रकार जिसने अपने अन्तःकरण में ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर ली फिर वह मोहित नहीं होता। ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्माण्ड को चलाने वाली वह शक्ति।

ब्रह्माड्डी ते पिंडी, हमारे अन्दर भी वह शक्ति है, परन्तु वह ढक गई।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनः ।

धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।।1-40।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ।।1-41।।

हे अर्जुन! अभी तुमने बताया कि कैसे युद्ध करना गलत है, परन्तु अभी तुम्हारा हृदय उस ब्राह्मी स्थिति को नहीं समझ सकता, अतः अभी तुम नहीं बता सकते कि क्या सही है, क्या गलत है?

श्रीभगवान् कहते हैं कि अन्त काल में जो इस स्थिति में स्थित हो गया, वह स्थिर बुद्धि पुरुष उस ब्रह्म शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

गुरुदेव कहते हैं कि गीता विषाद से प्रसाद तक का प्रवाह है। विषाद से इसका आरम्भ होता है और अन्तःकरण की प्रसन्नता तक यह हमें ले जाना चाहती है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।

जो मनुष्य का अन्तिम गन्तव्य है, वहाँ तक श्रीभगवान् ने ब्रह्म विद्या का वर्णन कर दिया है, परन्तु अर्जुन अभी सही या गलत नहीं समझ पा रहे हैं इसलिए श्रीकृष्ण ने इस ज्ञान की धारा को और भी आगे प्रवाहित किया। हम अपने मन की स्थिति के अनुसार कोई भी बात ग्रहण करते हैं, अर्जुन भी यही कर रहे थे।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं

ऐसे कृष्णवाक्य ऐकिलें, तेथ अर्जुनें मनीं म्हणतिलें,
आतां आमुचिया काजा कीर आलें।।

अर्जुन युद्ध छोड़ना चाहते थे इसलिए श्रीकृष्ण की बातों का अर्थ अर्जुन ने ऐसा लिया कि अच्छा हुआ श्रीभगवान् बता रहे हैं तुम आत्मज्ञान की स्थिति प्राप्त करो, ब्रह्म स्थिति प्राप्त करो, स्थितप्रज्ञ हो जाओ। इसका अर्थ है, श्रीभगवान् मुझे युद्ध छोड़ने के लिये कह रहे हैं, परन्तु श्रीभगवान् कर्म छोड़ने के लिए नहीं कहते। श्रीभगवान् बता रहे हैं कि अपने स्थान पर रहते हुए ही हम किस प्रकार उस परमात्म तत्त्व का रस चख सकते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

का आपुला ठाव न सांडिता, आलिंगी थे चंद्र प्रकटिता,
हां अनुरागी भोगितां कमलिनी जाणें।

कमल अपनी जगह पर रहकर ही चन्द्र की आभा प्राप्त करता है। इसी प्रकार अपने सभी कर्तव्य कर्म करते हुए आत्मज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार करें, इसी मार्ग को श्रीभगवान् गीता जी के माध्यम से प्रस्फुटित करते हैं।

साधकों की जिज्ञासाओं के समाधान के साथ सत्र की समाप्ति हुई।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - श्रीमती निशा गर्ग दीदी

प्रश्न - हमारी पाँचों इन्द्रियाँ अपना काम करती रहती हैं और हम उन्हें नियन्त्रित भी कर सकते हैं, परन्तु एक गृहिणी होने के नाते हमें औरों की रुचि अनुसार व्यञ्जन बनाने पड़ते हैं और उस स्थिति में हमारा नियन्त्रण डगमगा सकता है। ऐसे में मन को कैसे वश में कर सकते हैं?

उत्तर - श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताए हैं जो कि सर्वोच्च स्थिति है। हम उस स्थिति तक पहुँचने का केवल प्रयास कर सकते हैं। घर गृहस्थी चलाने के लिए परिवार में सभी की इच्छाओं का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिए व्यञ्जन और पकवान भी बनाने पड़ते हैं। हमें उन्हें सीमित मात्रा में ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए।

हमारे धर्म में कई व्रत नियमों का चलन है जो हमें जिह्वा पर नियन्त्रण करने में सहायक होते हैं। जिह्वा दो प्रकार से अनियन्त्रित होती है, एक तो क्रोध और आवेश में आकर कर्कश शब्द बोलते हुए और दूसरा, अत्यधिक मात्रा में भोजन करते हुए, इसीलिए उसे रसना भी कहते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने छठे अध्याय में कहा भी है

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥ 6-17 ॥

आजकल तो भोजन पर नियन्त्रण करने के अनेक उपाय और कक्षाएँ उपलब्ध हैं। इन्द्रियों पर नियन्त्रण एक अभ्यास है। मन को कामनाओं से दूर रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिए, जैसे भगवद्गीता लिखना या राम नाम लिखना।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती रमा अवस्थी दीदी

प्रश्न - मन के विकारों को कैसे नियन्त्रित कर सकते हैं?

उत्तर - स्थितप्रज्ञ अवस्था तक पहुँचना एक यात्रा है, गन्तव्य तक पहुँचने में समय लगेगा। गन्तव्य तक पहुँचने की मन में लगन होनी चाहिए, जिससे हमारा दृष्टिकोण बदलेगा और विषयों की तीव्रता कम होगी।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती रमा अवस्थी दीदी

प्रश्न - कर्मकाण्ड से पूजा करना कितना आवश्यक है?

उत्तर - श्रीभगवान् की आरती करना, पत्र - पुष्प समर्पित करना कर्मकाण्ड पूजा कहलाता है। इससे मन को एकाग्र करने में सहायता मिलेगी।

श्री रमण महर्षि जी ने कहा था कि स्थूल को वश में करना आवश्यक है, शरीर पर नियन्त्रण नहीं होगा तो मन भी भटकेगा क्योंकि हम शरीर भाव में रहते हैं। वे कहते हैं कर्मकाण्ड एकोपचार पूजा है और उसे तब तक करते रहना है जब तक शरीर को भूख और प्यास लगती है। मन को एकाग्र करने के लिए शरीर को एकाग्र करना आवश्यक है। माला फेरना भी कर्मकाण्ड ही है।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती प्रमिला रानी दीदी

प्रश्न - कृपया श्री ज्ञानेश्वर महाराज जी के बारे में बताएँ?

उत्तर - श्री ज्ञानेश्वर महाराज पूना के पास आळन्दी नामक स्थान में रहते थे। उनके दो भाई और एक बहन थी। ज्ञानेश्वर जी को विष्णु, उनके बड़े भाई निवृत्ति नाथ को शिवजी, छोटे भाई सोपान को ब्रह्मा और बहन मुक्ताई को आदि माया का अवतार माना जाता है।

ज्ञानेश्वर महाराज के पिता श्री विठ्ठल पन्त ने संन्यास ले लिया था। उनकी माता रुक्मिणी देवी ने वट वृक्ष की सौ प्रदक्षिणाएँ की थीं जिससे प्रसन्न होकर उनके गुरु ने उन्हें पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। रुक्मिणी देवी ने उन्हें बताया कि उनके पति ने संन्यास लिया है तो यह आशीर्वाद कैसे फलेगा? जब गुरुदेव को पता चला कि उनके शिष्य विठ्ठल पन्त ही रुक्मिणी के पति हैं तो उन्होंने विठ्ठल पन्त को संन्यास छोड़ कर पुनः गृहस्थ जीवन बिताने की आज्ञा दी और गुरु के आशीर्वाद से उनकी चार दिव्य सन्तानें हुईं। समाज के ठेकेदारों को यह मान्य नहीं था और उन्होंने विठ्ठल पन्त के परिवार का बहिष्कार किया, उन पर अनेक अत्याचार किए और उनके पुत्रों का उपनयन संस्कार भी नहीं होने दिया। ज्ञानेश्वर महाराज के माता-पिता को देह प्रायश्चित्त करने को कहा गया और उन्होंने सङ्गम में समाधी ले ली।

इतना सब कुछ होने पर भी ज्ञानेश्वर महाराज के मन में समाज के लिए कोई दुर्भावना नहीं थी और न ही उन्होंने कभी कोई कटु वचन कहे, अपितु ज्ञानेश्वरी में उन्होंने पसायदान के माध्यम से उन्हें क्षमा कर दिया है। बाईसवें वर्ष में उन्होंने आळन्दी में

सञ्जीवन समाधी ग्रहण की।

प्रश्नकर्ता - डॉकर राकेश कालरा दीदी

प्रश्न - विश्वामित्र क्षत्रिय थे। तपस्या से वे ब्रह्मर्षि बने। बारह वर्ष तपस्या के बाद मेनका ने उनकी तपस्या भङ्ग की और फिर बारह वर्ष बाद रम्भा ने, तो विश्वामित्र ने और कितनी तपस्या की?

उत्तर- उन्होंने और बारह वर्ष तपस्या की और ब्रह्मर्षि बने। उन्हें तपस्वी का एक आदर्श उदाहरण माना जाता है क्योंकि वे बाधाओं से विचलित नहीं हुए और अडिग रहकर अपने गन्तव्य तक पहुँचे।

प्रश्नकर्ता - डॉकर राकेश कालरा दीदी

प्रश्न - कई लोग कर्मकाण्ड द्वारा पूजा तो करते हैं परन्तु दान धर्म नहीं करते या समाज सेवा नहीं करते क्योंकि उन्हें पूजा विधियों में व्यस्तता के कारण समय नहीं मिलता। क्या यह सही है?

उत्तर - ऐसे व्यक्तियों की आलोचना नहीं करना चाहिए क्योंकि वे अपना समय व्यर्थ की बातों में न लगाकर ईश्वर में लगा रहे हैं। किसी भी विधि से पूजा करें लेकिन अपना कर्त्तव्य कर्म नहीं भूलना चाहिए। बुद्धिजीवी कर्मकाण्ड में अधिक समय नहीं व्यतीत करते, वे अपनी बुद्धि को भी परिष्कृत करना चाहते हैं।

पूज्य गुरुदेव ने हमारे समय का व्यापक विभाजन किया है। उनके अनुसार हमें बीस प्रतिशत समय कर्मकाण्ड में, बीस प्रतिशत अपने निहित कर्मों में, चालीस प्रतिशत अपने मन को परिष्कृत करने में और बचा हुआ समय परम्पराओं को निभाने में बिताना चाहिए।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'सांख्ययोग' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुँचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ाये, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥